P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-7* (Part-2) March- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

मार्कण्डेय पुराण का शिक्षा–दर्शन

सुनीता गौड़
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
शिक्षा–शास्त्र विभाग
डी.पी.बी.एस. पी.जी. कालेज
अनूपशहर, बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

मार्कण्डेय पुराण में वर्णित कथाओं के मूल वक्ता मार्कण्डय ऋषि हैं। पुराणों का धार्मिक महत्व आज भी बहुत ज्यादा है। वेद ने ईश्वर की कल्पना को प्रतिनिष्ठित रूप दिया परन्तु पुराण ने उस ईश्वर को जनता तक पहुँचाया।

शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षाशास्त्री जब दर्शन के परिप्रेक्ष्य में किसी बात को कहता है तो वह बात प्रासंगिक हो जाती है। प्रस्तुत शोध–पत्र में मार्कण्डेय पुराण के शैक्षिक तत्वों को लिया गया है मार्कण्डेय पुराण के शिक्षा–दर्शन के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दु लिए गए हैं–

(क) शिक्षा के उद्देश्य
(ख) पाठ्यक्रम
(ग) शिक्षण–विधियाँ
(घ) शिक्षक–शिक्षार्थी–सम्बन्ध इत्यादि।

मुख्य शब्द : मार्कण्डेय, परिकल्पित, प्रतिनिष्ठित, आवर्त, गार्हपत्य, एकतन्त्रात्मक, उत्पीड़न, आक्षेप, अनभिज्ञ।

प्रस्तावना

प्रसिद्ध अठारह पुराणों में मार्कण्डेय पुराण सातवाँ पुराण है। इसमें चार पक्षियों द्वारा व्यास शिष्य जैमिनी के प्रति मार्कण्डेय ऋषि की उस विद्या का वर्णन जिसे उन्होंने पितामह ब्रह्मा जी से प्राप्त किया था। इस पुराण में वर्णित कथाओं के मूल वक्ता मार्कण्डेय ऋषि हैं। इसीलिए इसका नाम मार्कण्डेय पुराण है। भारतीय संस्कृति तथा धर्म के विकास में पुराणों की बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पुराण गौरव अनेक दृष्टियों से मननीय तथा माननीय है जिसमें धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि प्रमुख है। भारतीय धर्म के आधार ग्रन्थ तो वेद ही हैं परन्तु सामान्य मानव के लिए वेद को समझना दुष्कर कार्य है। मार्कण्डेय पुराण एक पूर्ण पुराण है, क्योंकि इसमें सर्ग प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित का विमल वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पुराण की वाणी में वेद ही बोलता है, पुराण के अर्थ निर्णय में वेदार्थ का ही निर्णय स्फुटित होता है। इसीलिए पुराण का धार्मिक महत्व आज भी हमारे लिए बहुत विशिष्ट है। वेद ने ईश्वर की कल्पना को प्रतिनिष्ठित रूप दिया, परन्तु पुराण ने उस ईश्वर को जनता तक पहुँचाया।

मार्कण्डेय पुराण के वे तत्व जो मानव जीवन से सम्बन्धित हैं और जिनका उद्देश्य शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों के उत्कर्ष में निहित है और जो तत्व ग्राह्य कर्म तथा अग्राह्य कर्म की विवेचना करते हैं तथा जो तत्व आत्मा व परमात्मा का परिज्ञान कराते और जीवन अथवा शिक्षा के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष्य की विवेचना करते हैं।

शिक्षा की सभी समस्यायें अन्त में दर्शन की समस्यायें बन जाती हैं इसलिए शिक्षा के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अन्तिम रूप में जीवन दर्शन से प्रभावित होता है। आगे हम शिक्षा के कुछ प्रमुख प्रश्नों पर दर्शन के इसी प्रभाव का विवेचन करेंगे–

अध्ययन का उद्देश्य

प्रत्येक शिक्षा का अपना एक उद्देश्य होता है। शिक्षा का उद्देश्य जीवनोद्देश्य से सम्बन्धित होता है। दर्शन, जीवन के उद्देश्य की कल्पना करता है। शिक्षा उद्देश्य की पूर्ति के साधन जुटाती है। दर्शन यह निश्चित करता है कि किस उद्देश्य का अनुसरण करना उपयोगी है और किसका अनुपयोगी। दर्शन यह भी निश्चय करता है कि किन मूल्यों, मानदण्डों और आदर्शों का अनुसरण जीवन की सफलता में सहायक होता है। शिक्षा इन्हीं मूल्यों, मानदण्डों और आदर्शों को क्रियात्मकता प्रदान करने का प्रयत्न करती है। प्रत्येक शिक्षा को अपनी सफलता के लिए प्रयोगात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता पड़ती है और

इन सबके लिए उसे दर्शन का ही आश्रय लेना पड़ता है। आदर्शात्मक दृष्टिकोण के अभाव में शिक्षा यह निश्चित नहीं कर सकती कि उसके द्वारा परिकल्पित आदर्श और उद्देश्य कल्याणकारी हैं अथवा नहीं? एक ही दर्शन से प्रभावित अनेक शिक्षा व्यवस्थाओं को मार्गभ्रष्ट होने का भी भय नहीं रहता, क्योंकि आदर्शों और उद्देश्यों की एकरूपता के कारण उनमें विभिन्नता में भी एकता बनी रहती है।

आत्म दर्शन हो जाने पर साधक का सामर्थ्य बढ़ जाता है, विविध प्रकार के योग और अभ्युदय उसे सुलभ मालूम होने लगते हैं। 'श्रवण' श्रोत शक्ति का वह विकास है जिससे साधक को सम्पूर्ण शब्द सुनाई पड़ते हैं। 'दैव' का अर्थ है देव शक्ति का विकास जिसमें साधक देवता के समान समस्त दिशाओं को देखने लगता है। ध्येय से च्युत हो निरालम्बन होकर मन के भटकने का नाम भ्रम है। बहुमुखी ज्ञान के उद्रेक से चित्त के उद्वेग व विस्मय का नाम आवर्त है। इन विध्नों से बचने का उपाय प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए। इसके बाद पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन और बुद्धि की सात सूक्ष्म धारणाएं होती हैं।

योगी अपमान को अमृत और सम्मान को विष समझे। अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ, अहिंसा इन पाँच व्रतों का और अक्रोध, गुरूसेवा, पवित्रता, सात्विक तथा स्वल्प आहार नित्य स्वाध्याय इन पाँच नियमों का सदैव पालन करें। भू, भुवः, स्वः यह तीनों लोक, दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय ये तीनों वेद ओंकार के ही विकास हैं। योगी अपनी मृत्यु की आसन्नता समझ कर सावधान हो जाता है, और मृत्युकाल में होने वाले विविध कष्टों से अपनी रक्षा करता है। तैतालीसवें अध्याय के अन्त में अलर्क ने उत्तम ज्ञान और योग का उपदेश देने के निमित्त योगी दत्तात्रेय के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। सामर्थ्यवान मित्र, स्वजन तथा बन्धु के रहते यदि कोई धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से च्युत होता है तो इसके लिए वह निन्दनीय नहीं है अपितु वे सामर्थ्यशाली मित्र आदि निन्दनीय हैं जिनके रहते उसकी दुर्गति होती है। ब्रम्हा के मानसपुत्र सप्तर्षियों ने वेदों को तथा भृगु आदि मुनियों ने पुराणों को ग्रहण किया। भृगु से च्यवन, च्यवन से ब्रम्हर्षियों ने ब्रम्हर्षियों से दक्ष ने और दक्ष से मार्कण्डेय ने इसे प्राप्त किया। मार्कण्डेय ऋषि के कथनानुसार इस सृष्टि का रहस्य बहुत ही गूढ़ है।

मार्कण्डेय ऋषि के कथनानुसार इस सृष्टि का रहस्य बहुत ही गूढ़ है। 45 वें अध्याय के अन्त में उन्होंने बतलाया है कि महत्तत्व से लेकर पृथ्वी पर्यन्त सब तत्व (आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी आदि) मिल जाते हैं। मिलकर एक पुरूष में अधिष्ठित होते हैं। दार्शनिकों के मतानुसार मानव के प्रकृति–दत्त गुणों का विकास शिक्षा द्वारा ही सम्भव है।

जीवन सम्बन्धी प्रत्येक दार्शनिक की अपनी अलग–अलग व्याख्या होती है इसी के अनुसार वह शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करता है। रूसो ने कहा– ''हमारा वास्तविक अध्ययन मानवीय भाग्य के सम्बन्ध में है''। फिश्ते ने शिक्षा को 'ईश्वरीय इच्छा का अन्वेषण' स्वीकार किया शिक्षा स्वयं अपने आदर्शों को उद्देश्यों, मूल्यों और मानदण्डों की परिकल्पना में लगाये तो उसकी सफलता परिलक्षित होगी। प्रत्येक शिक्षा इसीलिए दर्शन का सहारा लेती है। हरबर्ट के शब्दों में– "शिक्षा को उस समय तक अवकाश मानने की आवश्यकता नहीं है जब तक सभी दार्शनिक प्रश्नों का सर्वदा के लिए निपटारा न हो जाये।" यह सत्य है कि विचारक जब जीवन की दार्शनिक व्याख्या करते है तब से इसके विरोधी पक्षों में से किसी न किसी पर पूर्ण दबाव डालते हुए दिखाई पड़ते हैं, किन्तु इन विरोधों का निराकरण दार्शनिकता का त्याग कर नहीं वरन् किसी अधिक गम्भीर और व्यापक दर्शन की खोज करना है। अनेक सिद्धान्त जो वाह्य दृष्टि से विरोधी और स्वरूप में पूर्ण दिखाई पड़ते हैं वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं।

पाठ्यक्रम

शिक्षा पर दर्शन का सबसे अधिक प्रभाव पाठ्यक्रम के निर्धारण में दिखाई पड़ता है। प्रत्येक दार्शनिक जीवन के उद्देश्य सम्बन्धी अपनी कल्पना के अनुसार ही पाठ्यक्रम का निर्धारण करता है। स्पेन्सर ने अपने आनन्दवादी दर्शन के अनुसार–पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में कहा कि पाठ्यक्रम के निर्धारण में हमारा प्रथम प्रयास निश्चय ही स्पष्ट रूप से मानव जीवन से सम्बन्धित क्रियात्मकताओं को उनके महत्व के अनुसार विभाजित करना होना चाहिए। जहाँ तक स्पेन्सर के पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचार का प्रश्न है उसमें कोई बुराई नहीं दिखाई पड़ती किन्तु जब हम मानवीय क्रियात्मकताओं को उनकी महत्ता के अनुसार विभाजित करने लगते हैं तब स्पेन्सर के दर्शन की निर्बलता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। स्पेन्सर प्रकृतिवादी दार्शनिक था इसलिए उसने मनुष्य की प्रकृति को व्यक्तिवादी दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा था। इसके विपरीत सर परसी नन जो कि आदर्शवादी दार्शनिक हैं उसने अपने दर्शन के अनुसार साहित्य, कला और संगीत को अपने पाठ्यक्रम में प्रथम स्थान दिया है। उनका कथन है–"यदि वे वस्तुएँ जिन्हें कला और विज्ञान का नाम दिया जाता है मिटा दी जायें तो इससे सभ्यता को बड़ी हानि होगी''। मनुष्य की आत्मरक्षा सम्बन्धी क्रियात्मकताओं को नन ने पाठ्यक्रम का विषय ही नहीं माना है।

पाठ्यक्रम के निर्धारण में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विचारधारा तथा परिस्थितियों का यथेष्ट प्रभाव पड़ता है। राजनीति की एकतन्त्रान्मकता विचारधारा पाठ्यक्रम को ऐसा रखती है जो समाज के सभी सदस्यों को एक ही साँचे में ढाल सके। धार्मिक समाज पाठयक्रम को धर्म प्रधान रखता है और धर्म निरपेक्ष समाज पाठ्यक्रम में देश और समाज की स्थिति पाठ्यक्रम को प्रभावित करती रहती है। पाठ्यक्रम को सन्तुलन और अव्यवस्था से बचाने के लिए ही ब्रिग्स ने कहा है– 'यही वह स्थान है जहाँ शिक्षा को गम्भीर रूप से नेताओं की आवश्यकता है जिनका निजी गम्भीर और व्यापक दर्शन पर अधिकार है, जो दूसरों को अपने दर्शन का विश्वास दिला सकते हैं और जो उचित पाठ्यक्रम की रचना में इस दर्शन का अनुकूल उपयोग कर सकते हैं।"

मार्कण्डेय पुराण में निहित पाठ्यक्रम नैतिकता और मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण था जो वर्तमान शिक्षा की समस्यायें उन समस्याओं के निराकरण में पुराण कालीन पाठ्यक्रम सकारात्मक भूमिका निभाता है। शारीरिक शिक्षा हेतु व्यायाम, खेलकूद, स्वस्थ जीवन शैली, मानसिक

विकास हेतु साहित्य, शास्त्रों का ज्ञान, उपदेशपरक शिक्षा, शास्त्र ज्ञान इत्यादि पाठ्यक्रम के अन्तर्गत माने जा सकते हैं।

आचार्य विनोबा भावे के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम उस धन के उपार्जन भर का शारीरिक श्रम करना ही चाहिए जितना उसके भोजन में व्यय होता है। पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में अन्त में हरबर्ट स्पेन्सर के विचार–''अब हमें विश्वास हो गया है कि हमारे इस संसार में श्रम से ही आनन्दों की उचित प्राप्ति हो सकती है''।

पाठ्य–पुस्तकें

पाठ्यक्रम के निर्धारण के साथ पाठ्य–पुस्तकों के चुनाव का प्रश्न भी जुड़ा है इसके लिए दर्शन की महती आवश्यकता है। देखा जाय तो आज पाठ्य पुस्तकों के प्रणयन का अर्थ कुछ पाठ्य–सामग्री का संकलन मात्र से ही रह गया है। प्रायः कठिन सामग्री आरम्भ में और सरल सामग्री अन्त में ही रह पाती है। भाषा और साहित्य की पाठ्य पुस्तकों में तो अक्सर त्रुटियाँ देखी जा सकती हैं। हमारी यह आर्थिक स्पृहा देश के भावी कर्णधारों के प्रस्फुटित होते हुए कोमल मन के साथ खिलवाड़ को जितनी जल्दी बन्द कर दें उतना ही देश के विकास के लिए उत्तम होगा। ब्रिग्स ने कहा है– "प्रत्येक व्यक्ति जो पाठ्यपुस्तकों के चुनाव के ढंग से परिचित हैं, आदर्शों और मानदण्डों में निश्चित ही विश्वास करेगा। पाठ्य पुस्तकों के प्रणयन और चुनाव में इस व्यवहारिकता का प्रयोग न होने का कारण वही है जो पाठ्यक्रम संशोधन की मन्द प्रगति में है। इनकी पृष्ठभूमि में निश्चय ही एक व्यापक एवं अनुकूल शिक्षा–दर्शन की अवस्थिति होनी चाहिए।

पुराण–कालीन शिक्षा दर्शन की पाठ्य पुस्तकों में मूल्यों के उन्नयन की व्यवस्था है। साथ ही स्वच्छ व सुन्दर समाज की संकल्पना, सम्बन्धों का यथोचित निर्वहन है।

शिक्षण विधि

प्रत्येक दर्शन अपनी धारणा के अनुरूप विशिष्ट शिक्षण विधि का समर्थन करता है। जिस प्रकार प्रकृतिवादी दर्शन व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसके उत्कर्ष का पोषक है उसी प्रकार आदर्शवादी दर्शन समाज के सांस्कृतिक उत्थान का समर्थन करता है प्रयोजनवादी दर्शन ने शिक्षा की प्रक्षेप विधि या प्रोजेक्ट मैथड को जन्म दिया है।

वर्तमान काल में प्रकृतिवादी दर्शन के प्रभाव से इस विचारधारा को अधिक महत्व प्राप्त हो गया है। बच्चे की स्वतन्त्रता के कारण शिक्षण विधि ने एक विवादास्पद समस्या खड़ी कर दी है। रूसो, फिश्ते और फोबेल यह विश्वास करते हैं कि बच्चे की प्रकृति सुन्दर एवं निष्पाप है। अतः वे उस पर सब प्रकार के नियन्त्रण का विरोध करते हैं। इसके विपरीत मान्टेसरी वातावरण की शुद्धता व पवित्रता पर विश्वास करती है। वह कहती है कि वातावरण और उसके द्वारा निर्मित शिक्षात्मक उपकरण बच्चे के लिए आदर्श हैं। उसमें उचित ढंग की प्रतिक्रिया करके उसके सुन्दर आवेगों को उभारने वाले हैं। अतः अध्यापक का आक्षेप अवांछित है। विधि केवल विद्यार्थी और विषय वस्तु के बीच सम्पर्क स्थापित करने और बनाए रखने की प्रक्रिया है।'

अनुशासन

शिक्षा के अनुशासन की समस्या का निराकरण भी दार्शनिक दृष्टिकोण द्वारा सम्भव है। शिक्षा का अनुशासन सर्वदा सामाजिक दर्शन व सामाजिक विचारधारा से प्रभावित रहता है। व्यक्तिवादी दर्शन विमुक्त्यात्मक अनुशासन और आदर्शवादी दर्शन प्रभावात्मक अनुशासन का समर्थन करता है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार समाज की जैसी विचारधारा बन जाती है वही उस काल का दर्शन हो जाता है। शिक्षा समाज का अंग है अतः वह सामाजिक विचारधारा से अछूती नहीं रह सकती। स्पेन्सर के अनुसार– "समकालीन क्रमागत शिक्षा व्यवस्थाओं और क्रमागत सामाजिक परिस्थितियों में सम्बन्ध अनिवार्य है। प्राकृतिक मन में दोनों की ही उत्पत्ति के कारण, प्रत्येक काल की संस्थाएँ अपने कार्यों की विशिष्टता के अतिरिक्त भी निश्चय ही पारिवारिक समता प्रदर्शित करेगी। जब समाज में राजनीतिक उत्पीड़न व्याप्त था जब आज्ञाएं कठोर थी, जब छोटे अपराधों पर भी निर्दय दण्डात्मक व्यवस्था थी, तब विरोध का मुख मृत्यु से बन्द किया जाता था। जब अतर्राष्ट्रीय तत्वों को सामूहिक घृणा, तिरस्कार और निर्वासन से कम का विधान नहीं था तब निश्चय ही पाठशाला का अनुशासन कठोर था।

निष्कर्ष

शोपेन हावर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जन्मजात दार्शनिक होता है। जॉन एस ब्रोचर ने लिखा है–''प्रत्येक अध्यापक का एक शिक्षा दर्शन होता है चाहे वह इससे भिज्ञ हो या अनभिज्ञ। इसीलिए प्रत्येक अध्यापक अपने शिक्षण में किसी न किसी दर्शन का सहारा लेता है''। सम्भवतः शिक्षक के प्रयोगात्मक पक्ष पर उसके दर्शन का जितना प्रभाव पड़ता है उतना अन्य किसी श्रमिक शिक्षक के प्रयोगात्मक पक्ष पर नहीं पड़ता। अतः प्रत्येक शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह किसी न किसी दर्शन का आश्रय अवश्य ले।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि पुराणकालीन शिक्षा मेरी दृष्टि में उत्तम थी, जिसमें कि दर्शन के सभी पक्षों का अनुपात सन्तुलित था चाहे वे शिक्षण उद्देश्य हो, पाठयक्रम हो मार्कण्डेय पुराणकालीन शिक्षण विधियों (उपदेश, कथन–विधि, उपदेश श्रवण–विधि, चिन्तन–मनन–विधि) या कोई और विधि हो, अनुशासन भी सर्वोत्तम था गुरू के प्रति शिष्य में अगाध श्रद्धा थी। अतः शिक्षक–शिक्षार्थी सम्बन्ध यथोचित और वर्तमान समय प्रेरणदायी थे।

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची

E.J Rapson- Cambridge History of India Vol I P. 296.

राहुल सांकृत्यायन – मध्य एशिया का इतिहास प्रथम खण्ड – बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना 1956

वासुदेव शरण अग्रवाल– मार्कण्डेय पुराण (एक सांस्कृतिक अध्ययन) हिन्दुस्तानी, एकेडमी, इलाहाबाद, 1961

भगवत्दत्त– भारतवर्ष का वृहत इतिहास (प्रथम भाग), दिल्ली। सं0 2008

भगवत्दत्त– भारतवर्ष का इतिहास (द्वितीय भाग), दिल्ली।

ज्वाला प्रसाद मिश्र–अष्टादश पुराण दर्पन (प्रकाशक–गंगा विष्णु श्री कृष्णदास, मुम्बई, सं0 1979 ई0–अधुना अप्राप्य)

R.K Sharma- Elements of Poetry in the Mahabharat (University of California Press-1964)

स्वामी दयानन्द–धर्म विज्ञान–तीन–खण्ड, प्रकाशक– भारतधर्म, महामण्डल, काशी 1939 ई0

श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी– पुराण तत्व मीमांसा (वाराणसी 1961)

मधुसूदन ओझा– पुराणनिर्माणाधिकरणम् तथा पुराणोत्पत्ति प्रसंग जयपुर , सं0 2009

कालूराम शास्त्री पुराणधर्म (कानपुर)